पञ्चसूत्रना कर्ता कोण, चिरन्तनाचार्य के आ. हरिभद्र ?

– विजयशीलचन्द्रसूरि

पञ्चसूत्र ए जैन साधुओमां सैकाओथी अत्यंत आदर प्राप्त करनारो ग्रंथ छे. आत्माना ऊर्ध्वीकरणनी अने चित्तशुद्धिनी, एमां रजू थयेली तात्त्विक / आध्यात्मिक, अनुभूत अने व्यवस्थित प्रक्रियाने कारणे, प्राकृत भाषामां टूंकां वाक्यो द्वारा निखरती रमणीयता धरावतो आ ग्रंथ, कदमां नानो होवा छतां तेनी लोकप्रियता बहु मोटी छे.

आ लघु ग्रंथ उपर श्रीहरिभद्रसूरि महाराजे नानी पण सरस अने सरळ वृत्ति रची छे. जेनां विविध संस्करणो प्रसिद्ध थयां छे, अने तेनुं संशोधित संस्करण,[१] दिल्हीथी प्रगट थयुं छे.

चित्तशोधन अने आत्मसाधनाना मार्गना साधको माटे कायम आकर्षणनुं केन्द्र बनी रहेनार आ पंचसूत्र परत्वे विचित्र बाबत ए छे के तेना कर्ता कोण – ए अद्यावधि अज्ञात ज रह्युं छे. तेना कर्ता अंगे कोइए विशेष लक्ष्य आपीने संशोधनना दृष्टिबिंदुथी विचारणा पण करी नथी ; बल्के परंपराथी चाली आवती 'आ कृति चिरंतनाचार्ये रची छे' तेवी वातने ज प्रामाणभूत हकीकत सौए मानी लीधी छे. जो के 'चिरन्तनाचार्य' शब्दना अर्थमां बे अभिप्रायो पड्या छे : १. चिरन्तन एटले प्राचीन आचार्यनी रचना अने २. 'चिरन्तन' नामना कोइ आचार्यविशेषनी रचना. परंतु आ बेमां प्रथम अर्थघटनने ज सार्वत्रिक स्वीकृति मळी छे.

आ ग्रंथना कर्तृत्व विशे बहु थोडो ऊहापोह थयो छे खरो, पण तेमां दरेक ऊहापोह करनार, छेवटे, 'आ अज्ञातकर्तृक छे' तेवा निष्कर्ष पर आवीने अटकी गया छे. आपणे ते दरेक अभिप्रायो, शरूआतमां ज, जोवा जोईए.

(१) प्रो. वी. एम. शाह, तेमणे करेला पञ्चसूत्र ना संपादननी भूमिकामां बे वातो / कल्पनाओ आ प्रमाणे निर्देशे छे :

1. It is composed according to him by चिरन्तनाचार्य– meaning ancient preceptors or preceptor with the name चिरन्तन. The first meaning is more likely. It is difficult to assign individual authorship to books like this.[२]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2. The term चिरन्तनाचार्यैः does not help us much in deciding the authorship. The plural form can be used out of respect for the author. At the same time it is very likely that ancient authors might have composed *sūtrās* and *Haribhadrasūri* might have put them together.[३]

(२) प्रो. के. वी. अभ्यंकर लखे छे ;

The Pañcasūtra which is a small elegant treatise written by some old writer whose name has still remained unknown.[४]

(३) प्रो. डॉ. ए. एन. उपाध्ये नोंधे छे ;

It is not possible to talk of individual authorship with regard to works like *Pañcasūtra*. The basic contents of this book are as ald as Jainism. They are a literary heirloom preserved in the memory of jain monks.[५]

(४) अने प्रो. वी. एम. कुलकर्णी स्पष्टता साथे कहे छे के :

The language of post-canonical Jain works in partly Prakrit- the so called-Jaina *MahārāṣTri* and partly Sanskrit. The language of the known Prakrit works of Haribhadra is Jaina *MahārāṣTri* whereas the present work is written in *Ardhamāgadhi* prose; and this prose shares quite a few pecularities of the diction and style of the canonical works. This fact suggests that *Acāryā* Haribhadra was possible not its author. It is not unlikely that the author of *Pañcasūtra* regarded the contents of the text as the property of the entire Jaina Samgha and preffered to remain anonymous. It is also suggestive of its early date of composition. How early it is diffcult to say. Since Haribhadra does not know who its author was. We may not be far wrong in saying that it was composed about a century or so before *Acāryā* Haribhadra flourished.[६]

उपरना चार अभिप्रायोनो सार ए छे के आ चारेय विद्वानो, पञ्चसूत्रना कर्ता आ.हरिभद्रसूरिजी नथी ए बाबतमां स्पष्ट छे अने एक मत धरावे छे. तो मुनि श्रीजंबूविजयजी पञ्चसूत्र ना कर्ता तरीके आ.हरिभद्रसूरिजी संभवित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होय तो ना नहि एवुं वलण धरावता होवा छतां, स्पष्ट प्रमाणोना अभावमां ते अंगे स्पष्ट विधान न करतां, 'चिरन्तनाचार्यरचित' एवी परंपराने ज यथावत् स्वीकारे छे.[७]

विद्वानोनां आ मंतव्यो तथा आरूढ परंपरानी सामे मारुं स्पष्ट विधान छे के पञ्चसूत्रना कर्ता स्वयं आ.हरिभद्रसूरिजी ज छे, अने बीजुं कोइ ज नहि ज. मारा आ विधानना समर्थनमां हुं केटलांक, अंतरग-बहिरंग परीक्षणो रजू करीश.

१. पंचसूत्रनी टीकानी समाप्ति थाय छे त्यां, छेवटे, त्रण वाक्यो आवे छे: '**प्रव्रज्याफलसूत्रं समाप्तम् । एवं पञ्चमसूत्रव्याख्या समाप्ता ॥ समाप्तं पञ्चसूत्रकं व्याख्यानतोऽपि** ॥'[८]

आ त्रण वाक्योमां त्रीजुं वाक्य खास ध्यान आपवाजोग छे. आ त्रीजुं वाक्य टीकाकारनुं छे, अने तेथी ते खरेखर '**समाप्तं पञ्चसूत्रकं व्याख्यानतः**' ए रीते; अने वस्तुतः जो टीकाकार अने सूत्रकार जुदा ज होय तो '**समाप्ता पञ्चसूत्रकटीका**' आवुं ज होवुं जोइतुं हतुं. ज्यारे अहीं तो '**समाप्तं पञ्चसूत्रकं व्याख्यानतोऽपि**' एवुं वाक्य छे, ए अने एमांनो छेवटे मूकायेलो 'अपि' शब्द सूचक महत्त्व धरावे छे. ए 'अपि' सूचवे छे के 'पञ्चसूत्रक व्याख्यारूपे पण पूर्ण थयुं ; अर्थात् , ते मूळसूत्ररूपे तेम ज व्याख्यारूपे – बन्ने रूपे समाप्त थयुं.' आमांथी जो 'अपि' शब्द काढी लइए, तो एवो अर्थ थशे के 'पञ्चसूत्र व्याख्यारूपे समाप्त थयुं' एक 'अपि' शब्द वधे छे ने आखो अर्थ-संदर्भ बदलाई जाय छे. ए सूचवे छे के जो टीकाकार अने सूत्रकार बे अलग व्यक्ति होत तो आवो प्रयोग – आवुं वाक्य कदी थइ शके नहि; बन्ने-सूत्र अने टीका-ना प्रणेता एक/अभिन्न व्यक्ति होय तो ज आवुं वाक्य ते प्रयोजी शके. हवे टीकाकार कोण छे ते तो नक्की ज छे. एथी एमने ज सूत्रकार पण मानीए तो ज आवो वाक्यप्रयोग सुसंगत बने.

कोइ एम कही शके के मूळ सूत्रनी समाप्ति थई त्यां सूत्रकारे जेम 'समत्तं पंचसुत्तं'[९] ए वाक्य सूत्रसमाप्ति सूचववा माटे प्रयोज्युं छे तेम अहीं, ते वाक्यना अनुसंधानमां, टीकाकारे, टीकासमाप्ति सूचववा माटे आ वाक्य प्रयोज्युं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छे. तेथी तेने मूळ सूत्र अने तेना कर्ता साथे सांकळवानुं बराबर नथी.

आना जवाबमां एटलुं ज कही शकाय के आवुं होय तो टीकाकार, उपर कहेवायुं छे तेम, **'समाप्तं पञ्चसूत्रकं व्याख्यानत:'** के **'समाप्ता पञ्चसूत्रककटीका'** एटलुं ज कही शक्या होत, ने ते ज उचित पण गणात. वळी, आगळ उपर **'पञ्चसूत्रकटीका समाप्ता'**[१०] एवुं स्वतंत्र वाक्य–टीकाकारे ज लखेलुं– आवे तो छे. ए वाक्यने लीधे पेला वाक्य (समाप्तं पञ्चसूत्रकं व्याख्यानतोऽपि) नो आखोय संदर्भ आपो आप बदलाइ जाय छे, अने टीकाकारे लखेलुं ए वाक्य, टीकाकार अने सूत्रकारनी अभिन्नतानुं स्पष्ट सूचन आपे छे. आम छतां, आगळ आवनारा मुद्दाओना परिप्रेक्ष्यमां आ वात विचारीशुं, तो आ शंका अस्थाने होवानुं समजी शकाशे.

बीजी वात, मूळ सूत्रकारे तो **'समत्तं पञ्चसुत्तं'** एवो शब्दप्रयोग कर्यो छे, एमां 'पञ्चसूत्र'[११] समाप्त थयानो निर्देश छे, 'पञ्चसूत्रक' नहि. हवे टीकाकार तो लखे छे के **'समाप्तं पञ्चसूत्रकं'**, अन्यत्र पण सर्वत्र[१२] टीकाकार आ रचनाने पञ्चसूत्रक तरीके ज ओळखावे छे. तो शुं मूळकारे आपेल नाम साथे हरिभद्रसूरि जेवा समर्थ विवरणकार आ रीतनी छूट ले खरा ? एवी छूट लेवानुं उचित गणाय खरुं ? बल्के तेमना जेवा प्राचीन विवरणकार तो मूळ सूत्रकारना अक्षरे–अक्षरने वळगीने ज चाले. अने तेथी ज अनुमान करी शकाय छे के जो टीकाकार स्वयं सूत्रना प्रणेता होय तो ज, पोतानी लखेली वातमां पोते यथेच्छ उमेरो करी शके ए न्याये, मूळ सूत्रने 'पंचसुत्त' एवुं नाम पोते ज आप्युं होय तोय टीकामां अने टीकाना अंते 'पञ्चसूत्रक' एवुं नाम आपी शके.

२. **'समाप्तं पञ्चसूत्रकं व्याख्यानतोऽपि'** ए वाक्यनी पछी, टीकाकारे केटलांक भावसभर वाक्यो मूक्यां छे : **'नमः श्रुतदेवतायै भगवत्यै । सर्वनमस्कारार्हेभ्यो नमः । सर्ववन्दनार्हान् वन्दे । सर्वोपकारिणामिच्छामो वैयावृत्त्यम् । सार्वानुभावादौचित्येन मे धर्मे प्रवृत्तिर्भवतु । सर्वे सत्त्वाः सुखिनः सन्तु, सर्वे सत्त्वाः सुखिनः सन्तु, सर्वे सत्त्वाः सुखिनः सन्तु ॥**[१३]

विवरणकारोनी ए परंपरा रही छे के तेमनुं काम सूत्रकारे के ग्रंथकारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णवेली वातोनुं अक्षरशः विवरण करवानुं ज छे. ए काम पूरुं थाय एटले समाप्तिसूचक पद्य/पद्यो के पंक्तिओ लखीने टीकाकार विरमी जता होय छे ; पण ए पछी ए-विवरणकार पोताना तरफथी कांई पण उमेरो करवानुं साहस कदी करता नथी. खुद आ.हरिभद्रसूरिजीए पोताना ज 'योगदृष्टिसमुच्चय' अने 'पञ्चवस्तुक' जेवा ग्रंथोनी स्वोपज्ञ विवृतिओमां पण आवी छूट लीधी नथी, के '**अष्टकप्रकरण**' के '**षोडशकप्रकरण**' नी टीकामां तेना समर्थ टीकाकारोए पण आवी छूट लीधी नथी. आथी उपर सूचवेली परंपरानो ख्याल आपणने मळी शके छे.

आ परंपराथी तद्दन ऊलटुं, पंचसूत्र नी टीका पूरी थया पछी श्रीहरिभद्राचार्ये, भले संस्कृतमां ज पण, मूळ सूत्रनी हरोळमां मूकी शकाय तेवी शैलीए आ छ जेटलां वाक्यो मूक्यां छे. आ वाक्यो 'पञ्चसूत्र' ना **प्रथम** 'पापप्रतिघातसूत्र' ना अंतिम-पंदरमा गद्यखंड '**नमो नमियनमियाणं** ।'[१४] साथे सरखावीए तो, बन्नेनी शैलीमां अने रजूआतमां, भाषाभेदने बाद करतां, कोई ज तफावत जडे तेम नथी. तेमांय टीकागत गद्यखंडमांनुं '**सर्वनम-स्कारार्हेभ्यो नमः**'[१५] ए वाक्य तथा '**सर्वे सत्त्वाः सुखिनः सन्तु** (३ वार)'[१६] ए वाक्य तो अनुक्रमे, सूत्रगत गद्यखंडनां '**नमो सेस** (अहीं नमोऽसेस होय तो बहु रोचक अने सुसंगत लागे) **नमोक्कारारिहाणं**'[१७] ए वाक्यनी तथा '**सुहिणो भवंतु जीवा**'[१८] आ वाक्यनी छायारूप ज लागे छे.

आ बाबत स्पष्टपणे एम मानवा प्रेरे छे के श्रीहरिभद्रसूरि महाराज ज मूळ सूत्रना पण कर्ता छे अने तेथी ज तेमणे, भावविभोर क्षणोनी अनुभूति करतां करतां, टीकामां पण आ गद्यखंड उमेर्यो छे. जो पोते सूत्रकार न होत पण फक्त टीकाकार ज होत तो तेमणे आवी छूट न लीधी होत, एम कहेवुं वधु पडतुं नथी लागतुं.

३. सत्तरमा-अढारमा सैकामां थयेला, समर्थ तार्किक अने 'लघु हरिभद्र' एवुं बिरुद मेळवनार महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी गणिए, तेमना 'धर्मपरीक्षा' नामे ग्रंथमां, ज्यारे पञ्चसूत्र नी साक्षी लेवानो अवसर उपस्थित थयो त्यारे, तेने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माटे आ रीते वाक्य मूक्युं छे : **पापप्रतिघातगुणबीजाधानसूत्रे हरिभद्रसूरिभिरप्येतद्भवसम्बन्धि भवान्तरसम्बन्धि वा पापं यत्-तत्पदाभ्यां परामृश्य मिथ्यादु-ष्कृतप्रायश्चित्तेन विशोधनीयमित्युक्तम्। तथा हि- 'सरणमुवगओ अ एएसि.... इत्थ मिच्छामि दुक्कडं** ३॥[१९]

(अर्थात् , हरिभद्रसूरिए पण, आ भव संबंधी अने भवांतर संबंधी पापनो 'यत् तत्' पदो वडे परामर्श करीने तेने मिथ्यादुष्कृतरूपी प्रायश्चित्त द्वारा शोधवानुं छे एम कह्युं छे. ने आ रीते-'आम कहीने आ पछी पंचसूत्रना प्रथम सूत्रनो एक गद्यखंड मूक्यो छ अने ते पछी तेनुं अर्थघटन उपाध्याय श्रीयशोविजयजीए पोतानी रीते कर्युं छे ते छे.)

उपर जणावेला पाठमां श्रीयशोविजयजीए '**पापप्रतिघातगुणबीजाधानसूत्रेवृत्तौ श्रीहरिभद्रसूरिभिरप्युक्तम्**' एम स्पष्ट लख्युं छे, पण 'पापप्रतिघातगुणबीजाधानसूत्रवृत्तौ' के 'पञ्चसूत्रवृत्तौ' एवुं नथी लख्युं ते नोंधपात्र मुद्दो छे. आ सूचवे छे के यशोविजयजी पासे कोइ एवी खातरीभरेली परंपरा विद्यमान हशे के जेमां पञ्चसूत्र हरिभद्रसूरिनी रचना होवानुं स्पष्टतया प्राप्त होय. ए सिवाय तेओ सहेलाइथी, वगरविचार्ये आवुं मानी ले अने आवो वाक्यप्रयोग करे ते संभवित नथी लागतुं.

४. पञ्चवस्तुक, पञ्चसूत्रक, अष्टक, षोडशक, विंशिका, पञ्चाशक – आ प्रकारनां नामो ए जैन साहित्यजगतमां मात्र हरिभद्राचार्यना ज फाळे जती विशेषतारूप छे. बीजा कोई पण कर्ताए आ प्रकरण ने 'पञ्चसूत्र' के 'पञ्चसूत्री' नामे ज ओळखाव्युं होत. पञ्चसूत्रक नाम हरिभद्रसूरिजीने ज सूझे. पञ्चसूत्रकनी व्युत्पत्ति अंगे मार्गदर्शन आपतां मुनि श्रीजंबूविजयजी लखे छे के –

'आ.हरिभद्रसूरिजी महाराजे रचेला एक ग्रंथनुं नाम व्यवहारमां 'पञ्चवस्तु' ए रीते प्रचलित छे, छतां तेमणे तो तेनुं 'पञ्चवस्तुक' नाम राखेलुं छे, अने तेनी व्युत्पत्ति पण ए रीते ज तेमणे दर्शावेली छे. जुओ आ पंचसूत्रक ग्रंथमां पृ. ८० टि. ५. 'पञ्चसूत्रक' शब्दनी व्युत्पत्ति तथा अर्थ पण ए रीते ज समजी लेवाना छे.[२०]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ मार्गदर्शन, उपर नोंधेली मारी कल्पना के 'आवां नामो तो हरिभद्राचार्यनी ज विशेषतारूप छे.' तेने ज प्रोत्साहन आपनारुं छे.

५. सौथी महत्त्वनी बाबत ए छे के आपणे 'पञ्चसूत्र' नां तथा हरिभद्रसूरिजीए रचेला अन्य ग्रंथोमां आवतां वाक्यो, वाक्यखंडो अने शब्दोनुं शाब्दिक अने आर्थिक साम्य तपासवुं जोईए. आ प्रकारनुं अंतरंग परीक्षण आ ग्रंथना कर्तृत्व अंगे निर्णय लेवामां सबळ सहायक साधन साधन बनी शके. आथी आपणे 'पञ्चसूत्र' ना केटलाक अंशोनी शक्य एटली तुलना हरिभद्रसूरिरचित 'विंशतिर्विंशिका', 'धर्मबिन्दु', 'योगदृष्टिसमुच्चय', 'षोडशक' इत्यादि ग्रंथोना अंशो साथे करीए :

१. 'पञ्चसूत्रक' ना चतुर्थ सूत्रमां 'व्याधितसुक्रियाज्ञात' आवे छे, ते आ प्रमाणे छे : **'वाहियसुकिरियानाएणं, से जहा केइ महावाहिगहिए, अणुभूयतव्वेयणे, विण्णाया सरूवेण, निव्विण्णे तत्तओ, सुवेज्जवयणेण सम्मं तमवगच्छिय जहाविहाणओ पवन्ने सुकिरियं, निरुद्धजहिच्छाचारे, तुच्छपत्थभोई मुच्चमाणे वाहिणा नियत्तमाणवेयणे समुवलब्भारोग्गं पवड्ढमाणतब्भावे, तल्लाभनिव्वुईए तप्पडिबंधाओ सिराखाराइजोगे वि वाहिसमारोग्गविण्णाणेण इट्ठनिप्फत्तीओ अणाकुलभावयाए किरियोवओगेण, अपीडिए, अव्वहिए, सुहलेस्साए वड्ढइ, वेज्जं च बहु मन्नइ'**[२१] इत्यादि.

आज व्याधितसुक्रियाज्ञात जराक जुदा शब्द अने संदर्भमां 'विंशतिविंशिका' नी १२मी विंशिकानी गाथा/पंक्तिओमां जोवा मळे छे :

'नो आउरस्स रोगो नासइ तह ओसहसुईए ॥१२॥
न य विवरीएणेसो किरियाजोगेण अवि य वड्ढेइ ।
इय परिणामाओ खलु सव्वं खु जहुत्तमायरइ ॥१३॥
थेवोऽवित्थमजोगो नियमेण विवागदारुणो होइ ।
पागकिरियागओ जह नायमिणं सुप्पसिद्धं तु ॥१४॥
जह आउरस्स रोगक्खयत्थिणो दुक्करा वि सुहहेऊ ।
इत्थ चिगिच्छाकिरिया तह चेव जइस्स सिक्खत्ति ॥१५॥[२२]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अने आ ज वात १२मा षोडशकनी सोळमी आर्यामां वधु स्पष्ट रीते मळे छे :

'व्याध्यभिभूतो यद्वन्निर्विण्णस्तेन तत्क्रियां यत्नात् ।
सम्यक्करोति तद्वद् दीक्षित इह साधुसच्चेष्टाम् ॥'[२३]

२. 'पञ्चसूत्र' ना चोथा सूत्रमां आवतो एक वाक्यसमूह आवो छे :

'से समलेट्ठुकंचणे समसत्तुमित्ते नियत्तग्गहदुक्खे पसमसुहसमेए सम्मं सिक्खमाइयइ, गुरुकुलवासी, गुरुपडिबद्धे, विणीए, भूयत्थदरिसी, न इओ हियतरं ति मन्नइ, सुस्सूसाइगुणजुत्ते तत्ताभिनिवेसा विहिपरे परममंते त्ति अहिज्जइ सुत्तं'॥[२४]

आ वाक्योनो ज भावार्थ धरावती अने अंशतः शाब्दिक साम्यवाळी, बारमी विंशिकानी गाथाओ आ प्रमाणे छे :

'इत्थ वि होदइगसुहं तत्तो एवोपसमसुहं ॥४॥
सिक्खादुगंमि पीई जह जायइ हंदि समणसीहस्स ।
तह चक्कवट्टिणो वि हु नियमेण न जाउ नियकिच्चे ॥५॥
गिण्हइ विहिणा सुत्तं भावेण परममंतरूव त्ति ॥[२५]

३. चोथा सूत्रमां ज '**आयओ गुरुबहुमाणो अवंझकारणत्तेण । अओ परमगुरुसंजोगो । तओ सिद्धी असंसयं** ।[२६] एवो पाठ छे, तेनी साथे संपूर्ण साम्य धरावती बीजा षोडशकनी आ कारिका जुओ :

गुरुपारतन्त्र्यमेव च तद्बहुमानात् सदाशयानुगतम् ।
परमगुरुप्राप्तेरिह बीजं तस्माच्च मोक्ष इति ॥१०॥[२७]

खूबी तो अहीं ए छे के 'पञ्चसूत्र' ना पाठमां आवता '**अवंझकारणत्तेण**' पदनो अर्थ, तेनी टीकामां '**मोक्षं प्रत्यप्रतिबद्धसामर्थ्यहेतुत्वेन**' एवो कर्यो छे, अने षोडशक ना पद्यमां रहेला 'सदाशयानुगतं' पदनो अर्थ पण, तेना टीकाकारोए '**सदाशयः संसारक्षयहेतुर्गुरुरयं ममेत्येवंभूतः कुशलपरिणामस्तेनानुग**[२८]**तं गुरुपारतन्त्र्यं**'[२९] एवो ज कर्यो छे. आथी आ बन्ने अलग ग्रंथोना पाठोनुं शाब्दिक ज नहि, आर्थिक साम्य पण छतुं थाय छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

૪. 'पञ्चसूत्र' ना पांचमा सूत्रमां आवता –

'निदंसणमेत्तं तु नवरं, सव्वसत्तुक्खए सव्ववाहिविगमे सव्वत्थ-संजोगेण सव्विच्छासंपत्तीए जारिसमेयं एत्तोऽणंतगुणं खु तं, भावसत्तु-क्खयादितो । रागादयो भावसत्तू, कम्मोदया वाहिणो, परमलद्धीओ उ अत्था, अणिच्छेच्छा इच्छा । एवं सुहुममेयं, न तत्तओ इयरेण गम्मइ, जइसुहमिवाजइणा, आरुग्गसुहं व रोगिण त्ति विभासा ॥'[३०]

आ पाठनुं, वीशमी 'सिद्धसुखविंशिका' नी निम्नोक्त गाथाओ :

'जं सव्वसत्तु तह सव्ववाहि सव्वत्थ सव्वमिच्छाणं ।
खय-विगम-जोग-पत्तीहिं होइ तत्तो अणंतमिणं ॥३॥
रागाईया सत्तू कम्मदुया वाहिणो इहं नेया ।
लद्धीओ परमत्था इच्छाऽणिच्छेच्छओ य तहा ॥४॥
अणुहवसिद्धं एयं नारुगसुहं व रोगिणो नवरं ।
गम्मइ इयरेण तहा सम्ममिणं चिंतियव्वं तु ॥५॥'[३१]

साथेनुं साम्य केटलुं विस्मयप्रेरक छे ते स्वयंस्पष्ट छे.

५. आ ज रीते, पांचमा सूत्रना **'जत्थ एगो तत्थ णियमा अणंता'**[३२] ए वाक्यने २०मी विंशिका नी १८मी गाथाना **'जत्थ य अेगो सिद्धो तत्थ अणंता'**[३३] ए अंश साथे सरखावी शकाय तेम छे.

वळी, पांचमा सूत्रमां एक वाक्य आवे छे : **'न सत्ता सदंतरमुवेइ'**[३४]. आ वाक्य एक सबळ अने दार्शनिक युक्तिस्वरूप छे, जे जुदा जुदा संदर्भोमां पण, बंधबेसतुं आवी शके तेवुं होवाथी, त्यां प्रयोजी शकाय छे. अने आथी ज वीशमी विंशिका मां १९मी गाथामां आ ज युक्ति-वाक्यने श्रीहरिभद्रसूरि महाराजे प्रयोजी बताव्युं छे :

'एमेव भवो इहरा ण जाउ सत्ता तयंतरमुवेइ ।'[३५]

अहीं प्रो. के. वी. अभ्यंकरे 'विंशतिविंशिका' ना पोताना संपादनमां स्वीकारेलो अने परंपरागत रीते सर्वत्र प्रचलित पाठ आम छे :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'एमेव भवो इहरा ण जाउ सन्ना तयंतरमुवेइ'[३६] आ पाठ हवे, 'पञ्चसूत्र' गत आ **'न सत्ता सदंतरमुवेइ'** ए वाक्य अने तेना प्रयोगनी पद्धति जोया पछी अशुद्ध प्रतीत थाय छे. लेखकदोषथी 'सत्ता'नुं 'सन्ना' थयुं हशे, अथवा वांचनारे तेने खोटुं वांच्युं होय एवुं ए बने. अने कोइ कोइ हस्तप्रतिमां 'एमेव भवो' पाठ मळे छे ज. आथी, 'सत्ता न तयंतरमुवेइ' एवुं वाक्य ज आ स्थळे अर्थसंगत अने बंधबेसतुं पण आवे छे. अने आ जोतां 'विंशिका' ना अने 'पञ्चसूत्रक' ना प्रणेता एक ज आचार्य होवानी धारणा बिलकुल निःसंदेह बने छे.

७. 'पञ्चसूत्रक' मां पांचमा सूत्रमां :

'ण दिदिक्खा अकरणस्स । ण यादिट्ठम्मि एसा । ण सहजाए णिवित्ती । ण निवित्तीए आयट्ठाणं । ण यण्णहा तस्सेसा । ण भव्वत्ततुल्ल णाएणं । ण केवलजीवरूवमेयं ।'[३७]

इत्यादि वाक्योमां आवती चर्चा ज, बीजी 'लोकाऽनादित्वविंशिका'नी :

'जह भव्वत्तमकयगं न य निच्चं एव किं न बंधोऽवि ? ।
किरियाफलजोगो जं एसो ता न खलु एवं ति ॥१४॥
भव्वत्तं पुणमकयगमणिच्चमो चेव तहसहावाओ ।
जह कयगोऽवि हु मुक्खो निच्चोऽवि य भाववइचित्तं ॥१५॥
एवं चेव यऽदिक्खा(दिदिक्खा) भवबीजं वासणा अविज्जा य ।
सहजमलसद्दवच्चं वन्निज्जइ मुक्खवाईहिं ॥१६॥'[३८]

– आ गाथाओमां जराक प्रकारांतरे वर्णवाई छे.

८. ए ज रीते, प्रथम सूत्रगत **'अणाइजीवे, अणादिजीवस्स भवे, अणादिकम्मसंजोगणिव्वत्तीए'**[३९] ए वाक्यनो तथा पंचमसूत्रगत **'अणाइमं बंधो पवाहेणं'**[४०] ए वाक्यनो ज युक्तिप्रधान अर्थविस्तार, बीजी विंशिका नी प्रारंभनी बारेक [४१] गाथाओमां जोवा मळे छे.

९. प्रथम सूत्रना **'सुद्धधम्मसंपत्ती पावकम्मविगमाओ, पावकम्म-विगमो तहाभव्वत्तादिभावाओ''**[४२] ए वाक्यनो भावानुवाद, चोथी विंशिका नी प्रथम गाथा :

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'निच्छयओ पुण एसो जायइ नियमेण चरमपरियट्टे ।
तहभव्वत्तमलक्खयभावा अच्चंतसुद्ध त्ति ॥१॥'[४३]

आमां, तेम ज ते ज विंशिका नी आठमी गाथाना पूर्वार्धः

'एयंमि सहजमलभावविगमओ सुद्धधम्मसंपत्ती ॥'[४४]

एमां स्पष्टरूपे प्राप्त थाय छे.

१०. तृतीय सूत्रमां आ प्रमाणे पाठ छे :

'तओ अणुण्णाए पडिवज्जेज्ज धम्मं । अण्णहा अणुवहे चेवोवहाजुत्ते सिया । धम्माराहणं खु हियं सव्वसत्ताणं । तहा तहेयं संपाडेज्जा । सव्वहा अपडिवज्जमाणे चएज्ज ते अट्ठाणगिलाणोसहत्थचागनाएणं ।'[४५]

आ पाठनी साथे श्रीहरिभद्राचार्ये ज रचेला 'धर्मबिन्दु' ग्रथनां केटलांक सूत्रो सरखावी शकाय तेम छे. आ रह्यां ते सूत्रो :

'तथा-गुरुजनाद्यनुज्ञेति ।२३॥ तथा तथोपधायोग इति ।२४॥ दुःस्वप्नादि-कथनमिति ।२५॥ तथा विपर्ययलिङ्गसेवेति ।२६॥ दैवज्ञैस्तथा निवेदनमिति ।२७॥ न धर्मे मायेति ।२८॥ उभयहितमेतदिति ।२९॥ यथाशक्ति सौविहित्यापादन-मिति ।३०॥ ग्लानौषधादिज्ञातात् त्याग इति ।३१॥'[४६]

अहीं खूबी ए छे के 'धर्मबिन्दु' नां उपर लखेलां सूत्रो पैकी २३,२४,२५ एवां अमुक सूत्रोनो अनुवाद, उपर नोंधेल पंचसूत्र-पाठमां साक्षात् प्राप्त थाय छे.[४७] पंचसूत्र अने तेनी टीका - बन्ने एक ज कर्ता-हरिभद्रसूरिनी ज रचना छे तें वातने आ बाबत प्रबळ समर्थन पूरुं पाडे छे.

११. पांचमा सूत्रमां आवतां **'ण दिदिक्खा अकरणस्स'** ए तथा **'ण सहजाए णिवित्ती'**[४८] ए, आ बे वाक्योना संदर्भ, 'योगदृष्टिसमुच्चय' ना :

दिदृक्षाद्यात्मभूतं तन्मुख्यमस्या निवर्तते ।
प्रधानादिनतेर्हेतुस्तदभावान्न तन्नतिः ॥२००॥
अन्यथा स्यादियं नित्यमेषा च भव उच्यते ॥२०१॥[४९]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आ बे श्लोको साथे, अनुक्रमे मळी रहे छे.

१२. 'दिदृक्षा' शब्दनो जैन साहित्यमां विनियोग सौ प्रथम श्रीहरिभद्र-सूरिना ग्रंथोमां मळे छे, एम मारी धारणा छे. तेमना ग्रंथो पैकी :

(१) 'योगदृष्टिसमुच्चय' ना उपर नोंधेला २००ना श्लोकमां दिदृक्षा शब्द प्रयोजायो छे.

'योगबिन्दु' ना ४८९मां श्लोकमां **'दिदृक्षादिनिवृत्त्यादिपूर्वसूर्युदितं तथा'** एम पूर्वसूरिओ (टीका अनुसार पतञ्जलि वगेरे पूर्वसूरिओ)ना हवाला साथे **'दिदृक्षा'** शब्द प्रयोजायो छे.[५०]

(२) 'विंशतिविंशिका' मां बीजी विंशिका नी १६मी गाथामां **'एयं चेव दिदिक्खा'** एवो 'दिदृक्षा' शब्दनो प्रयोग मळे छे. जो के प्रो. अभ्यंकरे स्वीकारेलो अने परंपराथी प्रसिद्ध पाठ तो **'एवं चेव यऽदिक्खा'** छे, जे अशुद्ध अने असंगत ज छे. त्यां 'दिदिक्खा' होवानुं स्वीकारीए तो ज शुद्धि अने अर्थसंगति थइ शके छे.[५१]

(३) 'षोडशकप्रकरण' मां १५मा षोडशक ना आठमा पद्यमां **'सामर्थ्ययोगतो या तत्र दिदृक्षेत्यसङ्गशक्त्याढ्या । सानालम्बनयोगः'**[५२] – एवो प्रयोग छे. जो के अहीं 'दिदृक्षा' नो अर्थ अन्य ग्रंथोमां थाय छे तेवो नथी थतो. अहीं तो ते 'अनालम्बनयोग' ना अर्थमां 'द्रष्टुमिच्छा दिदृक्षा' एवी व्युत्पत्तिपूर्वक वपरायो छे. छतां आपणे तो अहीं 'दिदृक्षा' शब्द साथे प्रयोजन छे, अने ते, ए शब्दनो अर्थसंदर्भ बदलाया छतां पण कांई निरर्थक जतुं नथी.

संभव छे के आ.हरिभद्रसूरिजी महाराजे पोताना अन्य ग्रंथोमां पण आ शब्द प्रयोज्यो होय. हवे आपणे ए जोवानुं छे के एक 'षोडशक' ने बाद करतां, उपरोक्त त्रण ग्रंथोमां, जे अर्थसंदर्भमां आचार्ये 'दिदृक्षा' शब्द प्रयोज्यो छे, ते ज संदर्भमां ते शब्द 'पञ्चसूत्र' मां पण **'ण दिदिक्खा अकरणस्स'**[५३] ए वाक्यमां प्रयोजायेलो जोवा मळे छे.

१३. पञ्चसूत्र ना चोथा सूत्रमां एक शब्द आवे छे **'समंतभद्दा'**.[५४] आ. श्रीहरिभद्राचार्यनो मनगमतो शब्द लागे छे. केम के 'विंशतिविंशिका' मां पण,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भले जुदा संदर्भमां, आ शब्द [55] जोवा मळे छे. त्यां तेनो अर्थ ते नामनी 'सर्वमंगलकारिणी पूजा' एवी थाय छे. ९मा षोडशक ना १०मा श्लोकमां आ पूजाने '**विघ्नोपशमनी**' नामे वर्णवी छे, पण तेना टीकाकार श्रीयशोविजयजीए ए पूजा '**समन्तभद्रा**'[56] तरीके प्रसिद्ध होवानुं सूचव्युं छे ज.

१४. अने पञ्चसूत्र ना अंतिम सूत्रमां लख्युं छे के :

'न एसा अन्नेसिं देया । लिंगविवज्जियाओ तप्परिण्णा । तयणुग्गहट्ठाए आमकुंभोदगनाएणं । एसा करुणा त्ति वुच्चइ ।'[57] इत्यादि.

आ वाक्योमां छे तेवो ज भाव दर्शावतो 'योगदृष्टिसमुच्चय' नो अंतभाग जुओ :

'हरिभद्र इदं प्राह नैतेभ्यो देय आदरात् ॥२२६॥
अवज्ञेह कृताऽल्पाऽपि यदनर्थाय जायते ।
अतस्तत्परिहारार्थं न पुनर्भावदोषतः ॥२२७॥'[58]

शाब्दिक तफावत छतां बन्ने संदर्भोनुं आर्थिक साम्य अहीं ध्यानपात्र छे.

उपर नोंधेला तमाम संदर्भो स्पष्टपणे दर्शावे छे के 'पञ्चसूत्र'-मूळना पण प्रणेता भगवान हरिभद्रसूरि स्वयं ज छे. ए सिवाय तेमना अन्य अनेक ग्रंथोना अनेक संदर्भ साथे, 'पञ्चसूत्र' ना संदर्भोनुं आटली हदे साम्य संभवे नहि.

आम छतां, जो 'पञ्चसूत्र' ने आ.हरिभद्रसूरिनी पूर्वे थयेला कोइ अज्ञात चिरंतन आचार्यनी ज रचना लेखवानो आग्रह राखवामां आवे, तो उपरना, 'पञ्चसूत्र' ना संदर्भो साथे सरखाववामां आवेला, हरिभद्राचार्यना अन्यान्य ग्रंथोना संदर्भो तेम ज तेमां निरूपित पदार्थोने, हरिभद्राचार्ये 'पञ्चसूत्र' मांथी शाब्दिक तेम ज आर्थिक रीते उछीना लीधा होवानुं आपणे मानवुं पडशे, अने ए साथे ज आ ग्रंथोनी / विचारोनी / रजूआतनी हारिभद्रीय मौलिकता समाप्त थई जशे, जे कोई रीते स्वीकार्य न गणाय.

६. पं. बेचरदास दोशीए नोंध्युं छे के, 'वैयाकरणोए शब्दशास्त्रनी दृष्टिए प्राकृतना त्रण प्रकार जणावेल छे : १. संस्कृतजन्य प्राकृत ; २. समसंस्कृत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत अने ३. देश्य प्राकृत. प्रस्तुत (हेमचन्द्रीय प्राकृत) व्याकरण पहेला प्रकारने लगतुं छे.'[५९]

आ विधानने सामे राखीने तपासीए तो पञ्चसूत्र (मूळ)नी भाषा पण हेमचन्द्रीय व्याकरणनी मर्यादाओमां समाइ शके तेवी संस्कृतजन्य प्राकृत भाषा होवानुं प्रतीत थाय छे. श्रीहरिभद्रसूरिना 'विंशतिविंशिका' आदि ग्रंथोनी भाषा आवी ज छे एवुं, ए ग्रंथोमां डगले ने पगले तेमणे प्रयोजेला संस्कृतसम अने संस्कृतभव शब्दो जोतां असंदिग्धपणे समजाय छे. अने आवुं ज आ 'पञ्चसूत्र' नुं पण छे, तेथी पण आ कृति श्रीहरिभद्र-प्रणीत होवानुं मानी शकाय तेम छे.

जो के केटलाक विद्वानोए पञ्चसूत्र नी भाषा प्राकृत (जैन महाराष्ट्री) नहि, पण आगमोमां प्रयोजाई छे तेवी-अर्धमागधी भाषा होवानुं मानवुं छे. परंतु तेमणे आम मानवा पाछळनां कोई कारणो के प्रमाणो दर्शाव्यां नथी. संभव छे के '**अणाइ जीवे, भवे, कम्मसंजोगनिव्वत्तिए , दुक्खरूवे, दुक्खफले**'[६०] इत्यादि प्रयोगोमां प्रथमा विभक्तिना एकवचनमां 'ए' कारनो प्रयोग जोइने ए विद्वानो आनी भाषाने अर्धमागधी कहेवा प्रेराया होय. पण एनी सामे, आ कृतिमां ज अन्यत्र अनेक स्थळोए , '**रागद्दोसविसपरममंतो, केवलिपण्णत्तो धम्मो, सरणमुवगओ, विवरीओ य संसारो, अणवट्ठिय-सहावो**'[६१] वगेरे प्रयोगोमां प्रथमा-एकवचनमां, प्राकृत भाषामां जे प्रयोजाता 'ओ' कारनो थयेलो उपयोग जो तेमणे ख्यालमां लीधो होत, तो तेमणे आवुं विधान करवानी उतावळ न करी होत. डॉ. कुलकर्णी तो विन्टरनिट्झने टांकीने 'आगमोत्तरकालीन जैन रचनाओ जैन महाराष्ट्री भाषामां छे, हरिभद्रनी अन्य रचनाओनी भाषा पण जैन महाराष्ट्री ज छे, ज्यारे 'पञ्चसूत्र' नी भाषा अर्धमागधी-गद्यात्मक छे, तेथी आ हरिभद्राचार्यनी नहि, पण तेमनाथी पूर्वनी रचायेली कृति छे,' एवुं तारण आपे छे.[६२] परंतु हरिभद्राचार्यना अन्य ग्रंथोनी अने पञ्चसूत्रनी भाषामां जणातुं विलक्षण साम्य अने उपर कह्युं तेम संस्कृतसम-संस्कृतभव भाषाप्रयोगोनुं पण साम्य, स्वयं प्रमाणित करे छे के आ कृति अर्धमागधीमां नथी, पण प्राकृतमां ज छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वळी, डॉ. कुलकर्णीनी ए दलील के, 'आ कृति अर्धमागधीमां-गद्यमां छे तेथी ते हरिभद्रप्रणीत मानी शकाय नहि, केम के तेमनी बीजी कृतिओ तो प्राकृतमां छे', ए पण न मानी शकाय तेवी छे. शुं एक ज कर्ता जुदी जुदी भाषाओ अने शैलीओ न प्रयोजी शके ? शुं एक कर्ता पद्यमां तेम ज गद्यमां पण लखी न शके ? वस्तुतः आ बाबत तो एक ज कर्ताना विपुल भाषाज्ञाननी अने व्यापक प्रतिभानी द्योतक बनी रहे तेवी छे.

७. बीजी एक महत्त्वनी बाबत ए छे के 'पञ्चसूत्र' चिरन्तनाचार्य नी रचना होवानुं मनाय छे, अने ए 'चिरन्तन आचार्य' नुं नाम अज्ञात छे एम मानीने ज आपणे आजपर्यंत चाल्या छीए. प्रश्न ए थाय छे के आ चिरन्तनाचार्य आजे आपणा माटे अवश्य चिरन्तन गणाय अने तेथी ते कदाच अज्ञात पण होवानुं स्वीकारी लईए. परंतु आ.हरिभद्रसूरि माटे आ चिरन्तनाचार्य अने तेमनुं नाम अज्ञात होय ए केवी रीते मानी शकाय ? डॉ. कुलकर्णीए अनुमान्युं छे के आ चिरन्तनाचार्य ते हरिभद्रसूरिथी आशरे १०० वर्ष के तेथी थोडा वधु वखत पहेला थया होवा जोइए.[६३] अने आपणे पञ्चसूत्र ने Post-canonical रचना मानीने चालवानुं होय तो डॉ. कुलकर्णीनुं आ अनुमान स्वीकारवुं ज जोइए. हवे विचारीए के पोतानाथी सो-बसो वर्ष पूर्वे ज थयेला चिरन्तनाचार्यना नामथी श्रीहरिभद्रसूरिजी अजाण अने अपरिचित होय एवुं बनवुं संभवित अने बुद्धिगम्य गणाय खरुं ?

वास्तवमां हरिभद्रसूरिथी, आ कृतिनी जेम ज तेना कर्ता पण-जो होय तो-अजाण्या न ज होइ शके. अने जो ते पोते आ सूत्रकारने जाणता होय तो तेमनो नामोल्लेख कर्या विना न ज रहे. छतां तेमणे तेम नथी कर्युं, ते मुद्दो आपणने तेमने ज सूत्रकार तरीके मानवा तरफ दोरी जाय छे.

उपरनी विस्तृत विचारणानुं फलित ए छे के 'पञ्चसुत्त' नी टीकानी जेम ज, तेना मूळ सूत्रना प्रणेता पण श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज ज छे ; अने ए सिद्ध थवानी साथे ज, आ लेखना आरंभमां आपेला, प्रो. वी. एम. शाह, प्रो. के. वी. अभ्यंकर, प्रो. ए. एन. उपाध्ये तथा डॉ. वी. एम. कुलकर्णी - ए चार विद्वानोए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नोंधेली ने परंपरागत रीते प्रवर्तती मान्यता अने तेने पोषनारी युक्तिओ आपोआप निर्बळ तथा निर्मूळ ठरे छे. चिरन्तनो एटले प्राचीन कोई एक के अनेक आचार्यो द्वारा आ सूत्रो रचायां हशे एवी, अने ए चिरन्तनोए पोते अज्ञात रहेवानुं पसंद करीने आ सूत्रोने समस्त संघनी मिल्कत थवा दीधी हशे एवी तमाम कल्पनाओ पण, आथी, व्यर्थ बने छे.

प्रश्न ए थाय छे के आ कृति हरिभद्रसूरिकर्तृक होवा छतां तेना कर्ता विशे भ्रांति / गरबड क्यांथी / क्यारे जन्मी ?

आ अंगे विचार अने तपास करतां जणाय छे के विक्रमना पंदरमा सैकामां के ते आसपास आ गरबड शरु थई होवी जोइए. 'पञ्चसूत्र' नी उपलब्ध त्रण प्राचीन ताडपत्रीय प्रतिओमां, जे १२माथी १४मा सैकाना गाळानी होवानो पूरो संभव छे तेमां, मुनि श्रीजंबूविजयजीए नोंध्युं छे तेम, क्यांय तेना कर्ता विशे नोंध छे नहि. तेमां तो फक्त **'समत्तं पंचसुत्तं'**[६४] ए प्रकारनो ज निर्देश छे. आ उपरथी अनुमान थई शके के ते गाळामां आना कर्तृत्व विशे कोई गरबड नहि होय.

१५मा शतकमां कोई विद्वान साधुए तैयार करेली मनाती 'बृहट्टिपनिका' नामनी जैन ग्रंथोनी सूचिमां सौ प्रथम आवी नोंध जोवा मळे छे.

पाञ्चसूत्रं प्राकृतमूलम् , सूत्राणि २१०.
वृत्तिश्च हारिभद्री ८८०.[६५]

आ नोंधमां 'पञ्चसूत्र' ना कर्ता विशे कोई उल्लेख नथी, अने तेनी टीका 'हारिभद्री' छे तेवी नोंध छे. ते उपरथी भ्रांति पेदा थई होय तो ना न कहेवाय. जोके जराक सूक्ष्म रीते आ नोंधने विचारीए तो 'पाञ्चसूत्रं प्राकृतमूलम् , सूत्राणि २१० वृत्तिश्च हारिभद्री ८८०' आम सळंग गोठवीने तेनो अर्थ एवो करीए के 'पंचसूत्र–प्राकृतभाषामां मूळ, सूत्र २१० ; अने (तेनी) वृत्ति (श्लोकमान ८८०) – हारिभद्रीय', तो आम 'च' शब्दनी सहायथी सूत्र ने वृत्ति – बन्ने माटे 'हारिभद्री' शब्द प्रयोजायो होवानुं (अने 'वृत्ति' शब्दनी साथे आवी जवाने कारणे स्त्रीलिंगे ते प्रयोजायो होवानुं) नकारी न शकाय. अलबत्त, आ जराक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्लिष्ट कल्पना छे ; अने सामान्यत: तो सौ, सूत्रकारनुं आमां नाम नथी, फक्त वृत्तिपरक ज 'हारिभद्री' एवो उल्लेख छे, तेवो सहेलो अर्थ ज मानवा प्रेराय. पण आ नोंधमां सूत्रकारना नाम परत्वे 'चिरन्तनाचार्यकृतं' के 'अज्ञातकर्तृकं' एवुं कशुं ज छे नहि, ए नोंधपात्र बाबत छे, अने ते उपरना क्लिष्ट लागतां अर्थघटनने पुष्टि आपनारी बाबत बने छे. पण आवुं कांईक विचारवाने बदले कोईके आ सूत्रने, आवी नोंध जोईने, अज्ञातकर्तृक कल्पी लीधुं होवुं जोइए. अने तेथी / त्यांथी ज गरबडनो आरंभ थयो हशे.

आ पछी, सत्तरमा शतकमां लखायेली 'पंचसूत्र'नी बे हस्तप्रतोनी पुष्पिकाओ जोतां स्पष्ट समजाय छे के ए समयमां के एथी थोडा पहेलाना समयथी, सूत्रकार अने टीकाकार जुदा जुदा होवानी अने सूत्रकारनुं नाम अज्ञातप्राय होवाथी भ्रांति स्थिर थई गई हशे. आ पुष्पिकाओ आ प्रकारनी छे : **'समत्तं पञ्चसूत्रकं ॥ छ ॥ कृतं चिरन्तनाचार्यैर्विवृतं च याकिनीमहत्तरासूनु-श्रीहरिभद्राचार्यैः॥**[६६]

कदाच आ अरसामां लखायेली कोई बीजी हस्तप्रतोमां पण आवी पुष्पिका होय तो ते संभवित छे. अने आवा ज उल्लेखोने लीधे 'पञ्चसूत्र' ना कर्ता विशे भ्रांत धारणा अने परंपरा पेदा थई होय ए समजवुं हवे अघरुं नथी. आवी गरबड पेदा करनारी पुष्पिकाओनुं सीधुं परिणाम ए आव्युं के 'पञ्चसूत्र-टीका' ने अंते टीकाकारे एटले के ग्रंथकारे 'पञ्चसूत्रकटीका समाप्ता' एवा वाक्यनी पछी मूकेल **'कृतिः सिताम्बराचार्यहरिभद्रस्य, धर्मतो याकिनीमहत्तरासूनोः'** ए वाक्यने 'पञ्चसूत्र'–मूळ सूत्र तथा टीका– ए बन्नेना संदर्भमां लेवाने बदले, आ वाक्य फक्त टीकापरक छे एवुं मानी लेवामां आव्युं.

अने, आ मान्यताने पोषण आपे तेवी बीजी बाबत ए छे के श्रीहरिभद्राचार्यनी कोईपण कृतिना अंतभागमां 'भवविरह' शब्द होय ज छे, ते आ सूत्रना अंतमां क्यांय जोवा मळतो नथी. आथी आ सूत्र भवविरहाङ्क आचार्यनुं नथी ए मान्यता वधु दृढ थई पडी.

हवे ज्यारे आपणने जाण थाय छे के आ रचना 'चिरन्तनाचार्य' नी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होवानी मान्यता तो सत्तरमा शतक करतां बहु वधू जूनी नथी त्यारे, अने उपर विस्तारथी चर्चेला, आ सूत्र हरिभद्रसूरि-प्रणीत होवा अंगेना प्रमाणो प्राप्त थयां छे त्यारे, पंचसूत्रना अंते मूकेलुं 'कृतिः सिताम्बरा०' ए वाक्य श्रीहरिभद्रसूरिजीनुं पोतानुं ज छे अने ते, सूत्र तथा टीका-बन्नेना संदर्भमां प्रयोजायेलुं छे, ए नक्की थाय छे. वळी, 'भवविरह' शब्दनो साक्षात् प्रयोग भले नथी थयो, पण भंग्यंतरथी ए शब्दनो भाव तो कर्ताए मूक्यो छे. 'भवविरह' एटले 'मोक्ष'. तेनी याचना के आशंसा तेमणे दरेक कृतिने अंते करी होय छे. सामान्यतः आ आशंसा 'भवविरह' शब्द द्वारा निषेधात्मक के नकारात्मक रूपे-भवनो विरह (मोक्ष) हो !-ए रीते तेओ रजू करे छे. 'पञ्चसूत्र' ना छेल्ला वाक्यमां पण कर्ताए मोक्षनी आशंसा तो व्यक्त करी ज छे, पण ते विरह शब्दथी नहि, किंतु '**निःश्रेयस**' शब्द द्वारा. विधेयात्मक के हकारात्मक रूपे करी छे. जुओ पंचसूत्रनुं अंतिम वाक्यः

'एसा करूणा त्ति वुच्चइ एगंतपरिसुद्धा अविराहणाफला तिलोगनाहबहुमाणेणं निस्सेयससाहिग त्ति पव्वज्जाफलसुत्तं ॥'[६७]

जो विरह शब्द माटे ज आग्रह सेववामां आवे, तो ते आ 'पंचसूत्र'नी हरिभद्रसूरि-प्रणीत मनाती टीकाना अंतभागमां पण क्यांय 'विरह' शब्द जोवा मळतो नथी, तेथी टीकाने पण हरिभद्रसूरि-प्रणीत मानवामां वांधो आवशे. आथी 'निःश्रेयस' शब्दने ज भवविरहनो पर्याय समजीने आ कृतिने श्रीहरिभद्रसूरि महाराज साथे सांकळवामां पूरतुं औचित्य छे.

श्रीहरिभद्रसूरिकृत ग्रंथ विशे प्राचीन ग्रंथकारो के वृत्तिकारो कोई नोंध के निर्देश आपे छे के केम ? ते दिशामां खोज करतां नीचे नोंधेला बे उल्लेखो मळी आवे छे.

हरिभद्रसूरिए कया कया ग्रंथो रच्या छे एनी नोंध प्राचीन तेम ज अर्वाचीन लेखकोए आपी छे. तेमां आपणे अहीं प्राचीन नोंधो विशे विचारीशुं.

(१) 'गणहरसद्धसयग' उपर सुमतिगणिए वि.सं.१२९५मां संस्कृतमां बृहद्वृत्ति रची छे. गा. ५५नी वृत्तिमां एमणे हरिभद्रसूरिनी कृतिओ गणावी छे.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चवस्तुक-उपदेशपद-पञ्चाशक-अष्टक-षोडशक-विंशिका-लोकतत्त्वनिर्णय-धर्मबिन्दु-योगबिन्दु-योगदृष्टिसमुच्चय-दर्शनसप्ततिका-नानाचित्रक-बृहन्मिथ्यात्वमथन-पञ्चसूत्रक-संस्कृतात्मानुशासन-कोशादि-शास्त्राणां गाव: ॥

'चतुर्विंशति प्रबंध' (पृ. ५२)मां नीचे जणाव्या प्रमाणे १११ ग्रंथोनो उल्लेख छे : (प्रबंधकोश, पृ. २५)

१. अनेकांतजयपताका, २. अष्टक, ३. नाणायत्तक, ४. न्यायावतारवृत्ति, ५. पंचलिंगी, ६. पंचवस्तुक, ७. पंचसूत्रक, ८. पंचाशत् , ९-१०८. सो शतक, १०९. श्रावकप्रज्ञप्ति, ११०. षोडशक, १११. समरादित्यचरित्र.[६८]

आ उल्लेख द्वारा स्पष्ट छे के 'पञ्चसूत्रक' ए श्री हरिभद्रचार्यनी ज कृती हती, अने ते विशे, चौदमा सैका सुधी तो कोई विसंवाद न ज हतो.

श्री ही. र. कापडिया निर्देशे छे तेम तो गणधरसार्धशतकनी पद्ममंदिरगणि (सं.१६७६) कृत वृत्ति पण उपरोक्त यादीने ज दोहरावे छे ; तेथी सत्तरमा शतकमां पण 'पंचसूत्र' अन्य कर्तानुं होवानी धारणा झाझी प्रचलित न हती ते सिद्ध थई शके छे. आम, अंतरंग अने बहिरंग परीक्षणोना परिपाकथी प्राप्त थतां प्रमाणोना आधारे पञ्चसूत्र मूळ श्रीहरिभद्रसूरिकर्तृक ज होवानुं सिद्ध थाय छे.

आ पञ्चसूत्र ए श्रीहरिभद्राचार्यना जीवननी परवर्ती एटले के जीवनना संध्याकाळे तेमणे रचेली, पोताना जीवनना तथा जीवनभर करेला शास्त्रसेवनना निचोडरूप रचना होवी जोईए. योगमार्गमां, योगनी उन्नत भूमिका पर स्वयं आरूढ थई गया पछीनी सहज आत्ममस्तीनी अनुभूतिनी सहज अभिव्यक्तिरूप आ कृति होय तो ना नहि. 'योगदृष्टिसमुच्चय' मां चर्चेली युक्ति-प्रयुक्तिओ आ सूत्रमां एकदम टूंकां वाक्योमां पण संभवत: त्यां करतां वधु सरस रीते रजू थई छे ते जोतां, तेम ज 'पञ्चसूत्र-वृत्ति' मां एक स्थाने 'योगदृष्टिसमुच्चयं' नुं[६९] उद्धरण पोते ज टांक्युं छे ते जोतां, आ कृति, 'योगदृष्टिसमुच्चय' वगेरे ग्रंथोनी रचना पछीथी ज रचाई हशे तेम मानी शकाय. तेओए पहेलां अन्यान्य विषयोना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेक ग्रंथो रच्या हशे, अने जीवनना उत्तरार्धमां, वार्धक्यने खोळे बेठा हशे तेवा काळमां, योगविषयक ग्रंथो रच्या हशे, अने तेमां पण 'पञ्चसूत्र' नुं स्थान सौथी छेल्लुं के छेल्ली कृतिओ पैकी एक तरीकेनुं हशे. प्रो. अभ्यंकर पण आ मुद्दा परत्वे पोतानो मत आवो ज नोंधे छे :

'एतै रचितानां तेषां तेषां ग्रन्थानां क्रमप्रतिपादने टीकाग्रन्था: प्राय: प्रथमं रचिता अनन्तरं धर्मकथा रचितास्तदनन्तरमनेकान्तजयपताका–लोकतत्त्वनिर्ण-यादय: प्राधान्येन जैनसिद्धान्तप्रतिपादनपरा ग्रन्था निर्मितास्तदनन्तरं षड्दर्शनसमु-च्चय–शास्त्रवार्तासमुच्चय–पञ्चाशकादयो दर्शनग्रन्थास्तदनन्तरं च योगदर्शनप्रति-पादकौ योगबिन्दु–योगदृष्टिसमुच्चयौ रचिताविति भाति। सर्वेषामन्ते परिणतप्रज्ञैरे-भिरागमसारभूत: स्वकीयग्रन्थप्रतिपादितानां विविधानां विषयाणां सङ्ग्रह-स्थानभूतश्चासौ विंशतिर्विंशिकानामा ग्रन्थो निरमायीति।'[७०] आमां आपणे हवे उमेरी शकीए के 'तदन्तरं योगमार्गारूढैरेभिरन्तिमतमे निजे जीवनभागे पञ्चसूत्रकस्य सटीकस्य रचना सन्दृब्धा स्यादिति।'

उपरनी चर्चाथी एवी कल्पना स्फुरे छे के आपणे त्यां कदाच बे प्रकारनी ग्रंथरचना–पद्धति हशे : १. उत्तरोत्तर ग्रंथोमां पूर्व पूर्व ग्रंथ–प्रतिपादित विषयनुं विस्तरण करवानी पद्धति ; अने २. पूर्व पूर्व ग्रंथोमां निरूपित विषयोनो उत्तरोत्तर ग्रंथोमां संक्षेप करवानी पद्धति. भगवान हरिभद्रसूरि विशे एम कही शकाय के तेमणे आ बीजी पद्धति अपनावी होवी जोईए. स्पष्टताथी समजाववा माटे आम कही शकाय के तेमणे :

१. पञ्चाशक
२. विंशिका
३. षोडशक
४. अष्टक
५. पञ्चसूत्रक

आ क्रमे पोतानी कृतिओ रची होय तो ते बनवाजोग छे.

अंतमां उमेरवुं जोईए के श्रीहरिभद्राचार्यनी प्रसिद्धि १४४४ प्रकरणोना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणेता लेखे आपणे त्यां छे. तेमना रचेलां थोडांक प्रकरणो तथा थोडांक टीकाग्रंथो (जेना मूळ ग्रंथो अन्य महर्षि-रचित होय) उपलब्ध छे. एमां आपणी पासे जे थोडांक प्रकरण ग्रंथो-खास करीने जे ग्रंथोनां नामोमां संख्यावाचक शब्दो प्रयोजाया छे ते ग्रंथो-उपलब्ध छे तेमां, 'पञ्चसूत्र' पण हरिभद्रसूरिकर्तृक होवानो निर्णय थवाथी, एक उत्तमोत्तम कृतिनो-प्रकरणनो उमेरो थाय छे, जे घणा सद्भाग्यनी अने हर्षनी घटना छे.

टीप्पणो

१. बी.एल.सिरिझ क्र.२ ; आचार्यश्रीहरिभद्रसूरिग्रन्थमाला क्र.१ प्रधानसंपादकः वा.म. कुलकर्णी, सं.मुनि जम्बूविजयजी, ई. १९८६.

२. पंचसुत्तं, संपा. वी.एम.शाह, ई.१९३४. Introduction p.17.

३. एजन, पृ.२०.

४. एजन, Foreword p.69.

५-६. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई.१९८६. Introduction p.33.

७. एजन, प्रस्तावना पृ. ४-५.

८. एजन, पृ. ८०.

९. एजन, पृ. ७९.

१०. एजन, पृ. ८१.

११. एजन, पृ. ८०.

१२. एजन, प्रस्तावना-पृ. ३.

१३. एजन, पृ. ८०-८१.

१४. एजन, पृ. २४.

१५-१६. एजन, पृ. ८०-८१..

१७-१८. एजन, पृ. २४.

१९. धर्मपरीक्षा, प्रकाशकः जैन ग्रंथ प्रकाशक सभा, अमदावाद, वि.सं. १९९८, पृ. २३-२४.

२०. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, प्रस्तावना पृ. ४.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. एजन, पृ. ५०-५३-५४.
२२. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ७०.
२३. षोडशकप्रकरणम् , प्र. श्रीमहावीरस्वामी जैन संघ-मुंबई, ई. १९८४, पृ. ७०.
२४. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६. पृ. ४५-४६.
२५. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ३७.
२६. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ५७.
२७. षोडशकप्रकरणम् , प्र. श्रीमहावीरस्वामी जैन संघ-मुंबई, ई. १९८४, पृ. १०.
२८. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ५८.
२९. षोडशकप्रकरणम् , प्र. श्रीमहावीरस्वामी जैन संघ-मुंबई, ई. १९८४, पृ. १०.
३०. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ७०.
३१. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ६१.
३२. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ७५.
३३. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ६३.
३४. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ६८.
३५-३६. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ६३.
३७. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ७३.
३८. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ६.
३९-४०. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ३.
४१. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ४-५-६.
४२. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ७१.
४३-४४. विंशतिविंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ११-१२.
४५-४६-४७. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ३७-४०.
४८. एजन , पृ. ७३.
४९. हारिभद्रयोगभारती, प्र. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, मुंबई, सं. २०३६, पृ. १२३.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०. एजन, पृ. २८६.

५१. विंशतिर्विंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. ६.

५२. षोडशकप्रकरणम् , प्र. श्रीमहावीरस्वामी जैन संघ-मुंबई, ई. १९८४, पृ. ८५.

५३. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ७३.

५४. एजन, पृ. ७६.

५५. विंशतिर्विंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, पृ. २४.

५६. षोडशकप्रकरणम् , प्र. श्रीमहावीरस्वामी जैन संघ-मुंबई, ई. १९८४, पृ. ८५.

५७. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ७८-७९.

५८. हारिभद्रयोगभारती, प्र. दिव्यदर्शन ट्रस्ट, मुंबई, सं. २०३६, पृ. १२९.

५९. प्राकृत व्याकरण, ले. पं. बेचरदास दोशी, प्र. गुजरात पुरातत्त्वमंदिर-अमदावाद, ई. १९२५, 'प्रवेश'-पृ. १२.

६०. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ३.

६१. एजन, पृ. ११-१३-३६.

६२-६३. एजन, Introduction पृ. ३३.

६४. एजन, प्रस्तावना, पृ. ४.

६५. एजन, प्रस्तावना, पृ. ३.

६६. एजन, प्रस्तावना, पृ. ४.

६७. एजन, पृ. ८०

६८. हरिभद्रसूरिः जीवन अने कवन, ले. हीरालाल र. कापडिया, पृ. ४८-४९ (उत्तरखंड), प्र. प्राच्य विद्यामंदिर, वडोदरा.

६९. पञ्चसूत्रकम् , सं. मुनि जंबूविजय, ई. १९८६, पृ. ६६.

७०. विंशतिर्विंशिका, सं. के. वी. अभ्यंकर, ई. १९३२, प्रास्ताविकं निवेदनं पृ. ७.

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org